* ओ३म् *

महर्षि दयानन्द जन्मभूमि शताब्दी टंकारा

की पुण्यस्मृति में

* ईश्वरीय ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प *

स्वाध्याय-शतक

अर्थात्

आर्यकुमार-गीता

* महर्षि दयानन्द सरस्वती *

[illegible]क ईश्वरदत्त भिषगाचार्य-गुरुकुल कांगड़ी

[illegible]यापक-श्रीदयानन्द राष्ट्रीय विद्यालय-कानपुर।

* जन्म-भूमिशताब्दी-फाल्गुण १९८२ वि० *

* आर्यकुमार-वर याचना *

...ें ।

... प्रभु० ॥

* स्वाध्याय-शतक *

अर्थात्

आर्यकुमार-गीता की आवश्यकता

देर से इस बात की चर्चा आर्यकुमार-जगत् में की जारही है कि आर्यकुमारों को गीता का पाठ करना चाहिए परन्तु आर्यकुमारों के सामने अभी कोई भी गीता का पुस्तक नहीं है जिसको निःसंकोच दे दिया जाय। प्रचलित गीता में 'त्रैगुण्यविषया:वेदा:' इत्यादि श्लोक पाये जाते हैं जिन पर कई महानुभाव आपत्ति करते हैं। इसलिए मैंने आर्यकुमारों के लिए विशेष प्रयत्न करके यह संग्रह प्रस्तुत किया है। आशा है फलप्रद होगा।

प्रथम वार दो हज़ार } जन्म शताब्दी फाल्गुण १९८१ विक्रमी { मूल्य चार आना

आर्यकुमारों के लिए अत्युपयोगी

❀ ईश्वरीय-ग्रन्थमाला ❀

के

पुष्पों की क्रमवद्ध सूची ।

---

(१) स्वाध्याय-शतक अर्थात् आर्यकुमार-गीता
(२) मनुस्मृति-शतक (अप्रकाशित)
(३) सुभाषित-शतक (,,)
(४) श्री चरक वचनामृत (,,)
(५) श्री सुश्रुत वचनामृत (,,)

टिप्पणी--आर्यकुमारों के उत्साह को देखकर पुस्तकें प्रकाशित की जांयगी ।

पुस्तकें मिलने का पता :—

कार्यालय ईश्वरीय-ग्रन्थमाला,
मेस्टन रोड, कानपुर ।
(गयाप्रसाद पुस्तकालय के सामने)

❀ लेखक के पूजनीय पिता ❀
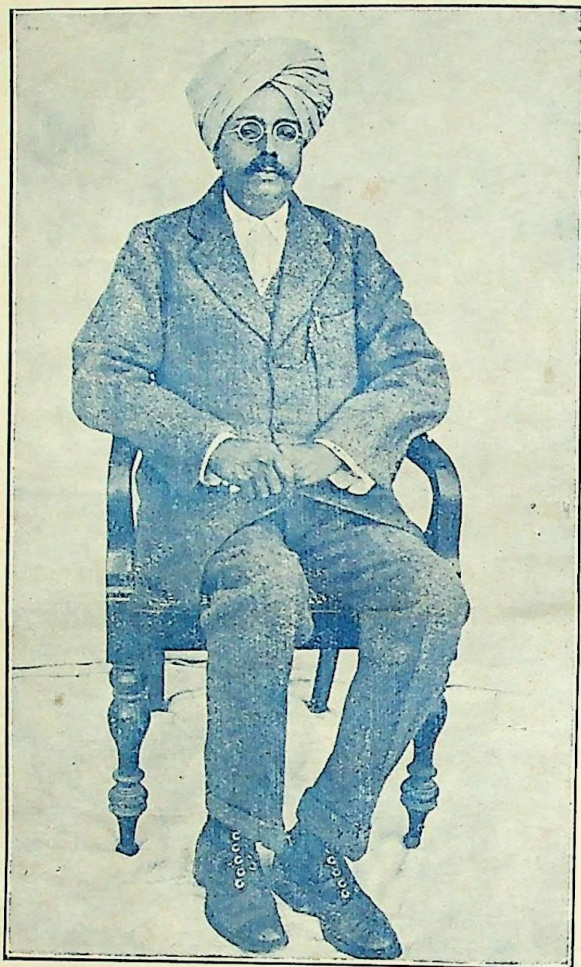
विद्याप्रेमी श्री डा० फ़कीरेरामजी, आई० एम० डी०

* संस्थापक *

श्री दयानन्द भारतीय विद्यापीठ, कानपुर।

Merchant Press, Cawnpore.

❀ लेखक के पूजनीय पिता ❀

विद्याप्रेमी श्री डा० [illegible]जी, आई० एम० डी०

* संस्थापक *

श्री दयानन्द भारतीय विद्यापीठ, कानपुर ।

* समर्पण *

मेरे परमपूजनीय पिताजी !

स्वीकार कीजिए ।

यह छोटी सी भेंट आपके दयालुता, परोपकार, ईश्वर-
विश्वास, विद्याप्रेम आदि विशिष्ट गुणों की
स्मृति में प्रस्तुत करता हूं ।

आप ही इसके प्रथम अधिकारी हैं

स्वाध्याय में श्रद्धा, वैदिकधर्म से प्रेम और ईश्वर में भक्ति
आदि मुझ में भी आप ही के कारण उत्पन्न हुई हैं ।

* किमधिकम् *

आप के चरणों में सादर सप्रेम सम्पर्पित है ।

❀ स्वीकार कीजिए ❀

भवदीय विनयावनत ज्येष्ठ पुत्र

ईश्वरदत्त

❀ पूर्वकथन ❀

महर्षि पतञ्जलि ने योगशास्त्र में लिखा है :—

"स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः"

अर्थात् स्वाध्याय से परमदेव परमेश्वर की प्राप्ति होती है। इस नरजन्म को पाकर सब से उच्च कार्य जो हम कर सकते हैं वह परमेश्वर की उपलब्धि है और उसमें मुख्य साधन स्वाध्याय है। अतः "स्वाध्यायान्मा प्रमदः" स्वाध्याय में कभी प्रमाद न कीजिए।

अष्टांगयोग मोक्षप्राप्ति के सोपान हैं, उनमें नियमों के अन्तर्गत स्वाध्याय भी है। योगशास्त्र में ही कहा है :—
"शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानि नियमाः"
अतएव स्वाध्याय को कदापि न छोड़िये।

स्वाध्याय एक यज्ञ है। इसकी पूर्ति बिना अध्यात्मविद्या सम्बन्धी ग्रन्थों के असम्भव है। वेद और उपनिषत् ही आध्यात्मविद्या के मुख्य पुस्तक हैं। परन्तु बिना संस्कृत का पूर्णज्ञान किये वेदों का स्वाध्याय कठिन है। फलतः संस्कृत का अभ्यास अत्यावश्यक हो जाता है परन्तु संस्कृत का अध्ययन भी हो और साथ साथ स्वाध्याय भी हो इस प्रयोजन के लिए आर्यकुमारों के हाथ अभी रिक्त हैं। मेरी सम्मति में आर्यकुमारों को "स्वाध्यायशतक अर्थात् आर्यकुमार-गीता" का प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। बस इतने से ही "एक पन्थ दो काज" हो जाते हैं।

गीता बहुत विस्तृत तथा अध्यात्म विद्यापरक बातों से पूर्ण है। मैंने संक्षेप से बिखरी हुई बातों को क्रमबद्ध कर दिया है। ऐसा करने से श्लोकों का क्रम तो अवश्य ही नवीन हो गया है परन्तु आर्यकुमारों को स्वाध्याय करने के लिए परमोपयोगी सिद्ध होगा।

श्लोकों की संख्या सौ रखने में प्रतिदिन यह भावना दृढ़ करने का अभिप्राय है कि:—

I मनुष्य की कम से कम सौ वर्ष की आयु है। इन सौ श्लोकों के अनुसार जीवन बिताने से हम निश्चय रूप से सौ वर्ष जीवित रह सकते हैं।

मैंने श्लोकों का भावार्थ मात्र किया है शब्दार्थ नहीं– आशा है भावबोध से स्वाध्याय का आनन्द पूर्णतया उपलब्ध होगा।

प्रूफ़ आदि के संशोधन में सुलेखाचार्य पण्डित गौरीशंकरजी भट्ट (सुलेखाध्यापक श्री दयानन्द राष्ट्रीयविद्यालय) तथा पण्डित रूपनारायण शर्मा उपदेशक ने जो कष्ट किया है तदर्थ हृदय से कृतज्ञ हूं।

अन्त में इतना ही निवेदन है कि इसमें मेरा कुछ नहीं है, सर्वस्व महर्षिदयानन्द और ब्रह्मर्षिकृष्ण का है। यदि संग्रह उपयोगी हुआ तो परिश्रम को सफल समझूंगा।

१ दिसम्बर सन् १९२५

वैदिक धर्म का सेवक–
स्नातक ईश्वरदत्त भिषगाचार्य
(गुरुकुल–कांगड़ी)

ओ३म्

स्वाध्याय-शतक

अर्थात्

आर्यकुमार-गीता

कथा प्रसंग

युद्धक्षेत्र में बन्धु बान्धवों को देखकर अर्जुन का हृदय पिघल गया, क्षत्रियोचित वीरता लुप्त होगई, नामर्दी ने आघेरा, जीवात्मा के मरने का भ्रम छागया, नश्वर देह के मोह में डूब गया, निष्काम कर्त्तव्य कर्म को महिमा को भूल गया। ऐसे समय में ब्रह्मर्षिकृष्ण ने मुख्य १६ ज्ञानों के उपदेश से षोडषी परमात्मा का ज्ञान कराया था। उन्हीं १६ ज्ञानों को इस "आर्यकुमार-गीता" में क्रमवद्ध कर दिया गया है।

* पहिला ज्ञान *

जीवात्मा कभी नहीं मरता, देह विनश्वर है।

१—हे अर्जुन ! नामर्द मत बनो–यह तुम्हारे लिए जंचता नहीं है। हे शत्रुओं को तपानेवाले वीर ! इस क्षुद्र हृदय की दुर्बलता को ठुकराकर युद्धके लिए उद्यत हो जाओ।

२--हे अर्जुन ! तुम सोचते होगे कि यह तुम्हारा आत्मा मर जायगा–नहीं ऐसा मत सोचो–आत्मा अमर है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण कर लेता है ठीक वैसे यह आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नवीन शरीर धारण कर लेता है।

३—आत्मा पर तो शस्त्र, अग्नि, जल और वायु किसी का भी असर नहीं पड़ता है।

४—आत्मा तो अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। इतना ही नहीं–नित्य, सर्वव्यापक, अचल और सनातन है।

५—हे अर्जुन ! जिस प्रकार इस नश्वर देह में जवानी और बुढ़ापा आता है। वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त हो जाता है। इसलिए धीर बन कर विचारशील बनो।

❀ अथ प्रथमं ज्ञानम् ❀

जीवात्मा कभी नहीं मरता, देह विनश्वर है ।

[१]

क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ ! नैतत् त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !!

[२]

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानिगृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयातिनवानि देही ॥

[३]

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

[४]

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय मक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु रचलोऽयं सनातनः ॥

[५]

देहिनोऽस्मिन् यथादेहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

६—हे अर्जुन ! और भी सुनो—जो पैदा होता है वह मरता है—और जो मरता है वह जन्म ग्रहण करता है इसलिए इस अवश्यम्भावी चक्र के लिए शोक मत करो।

७—हे अर्जुन ! यह भी विचार लो कि आत्मा तो अवध्य है फिर शोक किस बात का !!!

८—हे अर्जुन ! जिन के लिए शोक न करना चाहिए उन के लिए शोक करते हो और बातें अक्लमन्दों की सी करते हो।

भाई ! बुद्धिमान्जन तो किसी अवस्था में भी शोक नहीं करते हैं।

९—देखो—यह आत्मा न पैदा होता है और न मरता है। न यह भूत में था और न भविष्यत् में होगा। यह आत्मा तो अनादि, नित्य, स्थायी और सनातन है। यहाँ तक कि शरीर के नष्ट होने पर भी बना रहता है।

१०—हे अर्जुन ! बस तत्व की इतनी बात समझ लो कि इस नित्य आत्मा के यह शरीर नाशवान् हैं। इसलिए युद्धक्षेत्र में गाण्डीव पकड़ कर शूरवीर बनो।

[६]

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि ॥

[७]

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत !
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि ॥

[८]

अशोच्या नन्व शोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासून गतासूंश्च नानु शोचन्ति पण्डिताः ॥

[९]

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

[१०]

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत ॥

* दूसरा ज्ञान *

लिप्त न होकर निष्काम कर्म करना धर्म है ।

११—हे अर्जुन ! मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है। इसलिए तू फल की चिन्ता छोड़ कर अपने कर्त्तव्य कर्म की चिन्ता कर।

१२—वास्तव में जो मनुष्य ईश्वर के भरोसे काम करता जाता है और कर्मफल में लिप्त नहीं होता है वह ठीक कमल के पत्ते पर पानी की तरह पापों में कभी लिप्त नहीं होता है।

१३—सोचने की बात है कि योगी लोग तो शरीर, मन, बुद्धि और यहाँ तक कि इन्द्रियों से भी आत्मा के परिशोध के लिये सर्व कर्म करते हैं परन्तु उनमें लिप्त नहीं होते हैं।

१४—हे अर्जुन ! देखो कर्मफल की इच्छा को छोड़ कर अपने कर्त्तव्य पर डटा हुआ मनुष्य स्थायी शान्ति को प्राप्त कर लेता है—और फल की चिन्ता में लवलीन मनुष्य अपने सारे कार्यक्रमको बिगाड़ देता है ।

१५—इसलिए हे अर्जुन ! योगी की तरह लिप्त न होकर निष्काम कर्म कर—क्योंकि सफलता और असफलता में समान रहना ही योग है।

अथ द्वितीयं ज्ञानम्

लिप्त न होकर निष्काम कर्म करना धर्म है।

[११]

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

[१२]

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

[१३]

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्नि संगं त्यक्त्वात्म शुद्धये ॥

[१४]

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

[१५]

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

❀ तीसरा ज्ञान ❀

कर्म का सर्वथा परित्याग अधर्म है।

१६-हे अर्जुन! सन्यास और कर्मयोग दोनों ही मोक्ष के मार्ग हैं। परन्तु दोनों में कर्मयोग उच्चतर है।

१७-क्योंकि कर्म न करता हुआ मनुष्य यदि मन से कर्मशील बना रहे तो ढोंगी कहाता है।

१८-हे अर्जुन! इसलिए जो मनुष्य इन्द्रियों को मन के द्वारा पूर्णतया वश में करके निष्काम कर्म करता है वही उत्तम पदाधिकारी है।

१९-इसलिए हे अर्जुन! तू निश्चय से कर्मशील बन क्योंकि अकर्मी से कर्मी उच्चतर बताया गया है। देख तो सही—निकम्मे बैठ कर तो तेरे साधारण शरीर के व्यापार भी पूर्ण नहीं होते हैं।

२०-परन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना है कि यज्ञ अर्थात् परोपकार के अतिरिक्त कर्मबन्धन ही हैं। इसलिए हे अर्जुन! निष्काम भाव से परोपकार के कार्यों को तू सदा करता जा।

❀ अथ तृतीयं ज्ञानम् ❀

कर्म का सर्वथा परित्याग अधर्म है।

[१६]

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस करावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥

[१७]

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

[१८]

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन !
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

[१९]

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायोह्यकर्मणः ।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥

[२०]

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय ! मुक्तसंगः समाचर ॥

२१–निष्काम कर्म करनेवाले की तो इतनी महिमा है कि वही योगी और सन्यासी कहाता है । आजकल के अग्निहोत्रसे शून्य निकम्मे बैठनेवाले सच्चे सन्यासी नहीं हैं ।

२२–इतना ही नहीं, योगको इच्छा करनेवाले मुनि का कर्म तो योगप्राप्ति में मुख्य साधन है—और योग प्राप्तिके बाद शान्ति भी उसी का कारण बनती है ।

२३–देखो, योगारूढ़ भी कौन होता है यह भी जान लो । जब मनुष्य विषय वासना रूपी कर्मों में फँसता नहीं है और सम्पूर्ण इच्छाओं को त्याग देता है तब योगारूढ़ कहाता है ।

२४–हे अर्जुन ! इस सब का सारांश तो यह है कि कर्म का सर्वथा परित्याग अधर्म है इसलिए तू निष्काम कर्म कर । ऐसा करने से ही उस परमपद को पा सकेगा जिसकी चाह योगीजन किया करते हैं ।

२५–इतना मत भूलना कि बड़े लोग जो मर्यादा स्थापित कर देते हैं उसी पर साधारण मनुष्य चला करते हैं और तुझे सब के लिए सच्चा पथदर्शक बनना है इसलिए आत्मा में युद्ध के लिए निश्चय करले ।
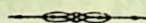
[२१]

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥

[२२]

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

[२३]

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मष्वनुषज्यते ।
सर्व संकल्प सन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

[२४]

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तोह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

[२५]

यद्द् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते ॥

❀ चौथा ज्ञान ❀

काम, क्रोध और लोभ ये तीन मुख्य शत्रु हैं।

२६—हे अर्जुन! रजोगुण से पैदा होने वाले काम, क्रोधादि बड़े भक्षक हैं। इन्हें तुम प्रबल बैरी समझो।

२७—देखो—गिरावट का क्रम यह है कि पहिले मनुष्य कु-
२८—वासनाओं का ध्यान किया करता है और ध्यान करते करते फंस जाता है और तुरन्त ही काम दबा लेता है। बस—कामसे क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-नाश और स्मृतिनाश से बुद्धिविनाश—यही सत्या-नाशी की अन्तिम सीमा है।

२९—हे अर्जुन! एक गुर याद कर लो—जितने भी स्पर्श से पैदा होने वाले भोग हैं सब दुःखों के मूल हैं। बुद्धि-मान् इस भंवर में नहीं फंसते हैं।

३०—यहाँ तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि जो मनुष्य अपने जीवन में ही काम, क्रोधादि के वेग को वश में कर लेता है वह सदा के लिए सुखी हो जाता है।

अथ चतुर्थं ज्ञानम्

काम, क्रोध और लोभ ये तीन मुख्य शत्रु हैं।

[२६]

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

[२७]

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥

[२८]

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृति भ्रशांद्द बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

[२९]

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय ! न तेषु रमते बुधः ॥

[३०]

शक्नोती हैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात ।
काम क्रोधोद्भवं वेगं सयुक्तः स सुखी नरः ॥

३१-यहां तक कहा है कि जो आत्मज्ञानी, यतिजन-काम, क्रोधादि से पृथक् हैं वे सर्वतोभाव से ब्रह्म की प्राप्ति किये बैठे हैं।

३२-कहने का अभिप्राय यह है कि जो निस्पृह मनुष्य सम्पूर्ण काम वासनाओं को छोड़ कर ममता और अहंकार से शून्य होकर विचरता है वह शान्ति की मूर्त्ति बन जाता है।

३३-हे अर्जुन ! फिर कहता हूं कि नरकरूपी कुण्ड में प्रवेश करने के लिए काम, क्रोध और लोभ यही तीन दरवाजे हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य इन तीनों को प्रयत्न से छोड़ दे। तभी आत्मरक्षा है।

३४-हे अर्जुन ! इन तीनों से अलग हुआ मनुष्य अपना भला कर लेता है और फिर मोक्षपद को भी प्राप्त कर सकता है।

३५-देखो-स्थितप्रज्ञ का लक्षण भी ऐसा ही किया है अर्थात् जब मनुष्य मन की वासनाओं को छोड़ देता है और आत्मा से ही आत्मा में प्रसाद गुण उत्पन्न कर लेता है तब स्थितप्रज्ञ कहाता है।

[३१]

काम क्रोध वियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥

[३२]

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

[३३]

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

[३४]

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय ! तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम् ॥

[३५]

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

❀ पांचवां ज्ञान ❀

अभ्यास और वैराग्य से मन एकाग्र होता है।

३६–हे अर्जुन ! निस्सन्देह यह मन कठिनता से वश में आने वाला और चञ्चल है परन्तु अभ्यास और वैराग्य की प्रवृत्ति से वश में आ जाता है।

३७–हे अर्जुन ! बुद्धिमान् पुरुष के यत्न करने पर भी बलवती इन्द्रियां ज़बरदस्ती मन को बहका लेती हैं।

३८–इसलिए जो पुरुष इन सब इन्द्रियों को ख़ूब काबू में लाकर परमेश्वर ही में अपने आप को लगा लेता है उसी की बुद्धि स्थिर कहाती है।

३९–अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह इस चञ्चल और अस्थिर मन को जिधर जिधर भागे उधर उधर से रोक कर अपने आत्मा के वश में लाने का प्रयत्न करे।

❀ अथ पञ्चमं ज्ञानम् ❀

अभ्यास और वैराग्य से मन एकाग्र होता है।

[३६]

असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥

[३७]

यततो ह्यपि कौन्तेय ! पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

[३८]

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

[३९]

यतो यतो निस्सरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतत् आत्मन्येव वशं नयेत् ॥

४०—जो मन इन्द्रियों के पीछे दौड़ता है वह ठीक जल में नाव को वायु की तरह सीधे मार्ग से च्युत कर देता है ।

४१—अतः हे अर्जुन ! जिस की इन्द्रियां सर्व प्रकार से वशीभूत हो चुकी हैं उसी की बुद्धि अटल और अचल है ।

४२—वास्तव में संयमी लोग साधारण मनुष्यों को दुःख अनुभव कराने वाली बातों में ज्ञान पूर्वक सचेत रहते हैं और झूठा सुख अनुभव कराने वाली बातों में अज्ञान का पर्दा जान कर मन ही मन तत्त्व को समझ लेते हैं ।

४३—इसलिए मेरी सम्मति में असंयमी पुरुष इस सच्चे योग को प्राप्त नहीं कर सकता और संयमी मनुष्य यत्न और उपाय करने पर प्राप्त कर सकता है ।

४४—सार तो यह है कि शुद्ध आचरणों वाला संयमी, योगी मनुष्य अनेक जन्मों में सिद्धि को पाकर परमात्मा में लवलीन हो जाता है ।

[४०]

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

[४१]

तस्माद् यस्य महाबाहो ! निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

[४२]

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

[४३]

असंयतात्मनो योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

[४४]

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

❀ छठा ज्ञान ❀

अन्तकाल में परमेश्वर को स्मरण करने में मुक्ति है।

४५—हे अर्जुन ! जिस जिस भावना के साथ मनुष्य इस नश्वर देह को छोड़ता है उसी उसी भावना के अनुसार भविष्य में गति होती है।

४६—हे अर्जुन ! अभ्यास के प्रभावसे मन का सब ओर से हटा कर परमपिता परमेश्वर का प्रतिक्षण चिन्तन करता हुवा ही मनुष्य मृत्यु के समय परमपुरुष को स्मरण कर सकता है।

४७—कहा भी है:—जो मनुष्य ओङ्कार इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण और स्मरण करता हुवा प्राणों को छोड़ता है वह सब से उच्चगति को प्राप्त करता है।

४८—इसलिए हे अर्जुन ! वही एक सबका पिता परमात्मा जिसने यह सारा संसार बनाया और जिस में सारे पदार्थ रमे हुवे हैं भक्ति और अभ्यास के बल से प्राप्त करने के योग्य है।

अथ षष्ठं ज्ञानम्

अन्तकाल में परमेश्वर को स्मरण करने में मुक्ति है।

[४५]

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भाव भावितः ॥

[४६]

अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

[४७]

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमांगतिम् ॥

[४८]

पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्यालभ्यस्त्वयानघ !
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

सातवां ज्ञान

समदर्शी होकर जीवन बिताना योग है।

४९–हे अर्जुन ! इस संसार में जो पुरुष दूसरे मनुष्यों को ठीक अपनी ही तरह समझता है और सदा सुख दुःख में एकसा रहता है वही वास्तव में परम योगी है।

५०–इसी प्रकार शत्रु, मित्र, उदासीन साधु और ठग सभी में बराबर बुद्धि रखने वाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है।

५१–हे अर्जुन ! पण्डित लोग विद्या, विनयादि गुणों से युक्त ब्राह्मण; एवं गौ, हस्ती, कुत्ता, पशु और चाण्डाल सब को समदृष्टि से देखते हैं।

५२–वास्तव में जिन लोगों में समबुद्धि की इतनी पराकाष्ठा हो जाती है वे लोग जीते हुये भी मुक्त हैं। यदि यह कहा जाय कि वे स्वयं निर्दोष होकर निर्दोष ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं तो अत्युक्ति न होगी।

५३–हे अर्जुन ! समबुद्धि रखने वाला पुरुष परलोक में उच्च गति को पाता है। बात तो यह है कि कल्याण मार्ग का पथिक कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त करता है।

अथ सप्तमं ज्ञानम्

समदर्शी होकर जीवन बिताना योग है।

[४९]

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन !
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

[५०]

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

[५१]

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

[५२]

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

[५३]

पार्थ ! नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याण कृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात ! गच्छति ॥

आठवां ज्ञान

सुख दुःखमें समानरहनेवाला परमेश्वरका प्यारा है ।

५४—हे अर्जुन ! मनुष्य को चाहिए कि वह प्रिय वस्तु को पाकर फूल न जावे और अप्रिय को पाकर उद्विग्न न हो जावे क्योंकि स्थिर बुद्धि पुरुष को ही ईश्वर में स्थिति है ।

५५—एवं-लोग जिससे भड़क न जावें और जो लोगों से न भड़के । साथ ही आनन्द, डर, क्रोधादि के वेगों से प्रथक् रहे वही ईश्वर का प्यारा है ।

५६—हे अर्जुन ! शत्रु और मित्र, मान और अपमान, शीत और उष्ण, सुख और दुःख इत्यादि द्वन्दों में समान रहने वाला भी ईश्वर का प्यारा है ।

५७—इसी प्रकार निन्दा और स्तुति को बराबर समझने वाला, मितभाषी, थोड़े में सन्तुष्ट, सर्वत्र अपना घर समझने वाला, स्थिरमति पुरुष भी ईश्वरका प्यारा है ।

अथ अष्टमं ज्ञानम्

सुख दुःखमें समान रहनेवाला परमेश्वरका प्याराहै।

[५४]

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चा प्रियम्।
स्थिर बुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥

[५५]

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नुद्विजते च यः ।
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

[५६]

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः संग विवर्जितः ॥

[५७]

तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियोनरः ॥

* नवां ज्ञान *

क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़ कर धर्म नहीं है।

५८—हे अर्जुन ! यदि तुम जीवात्मा को अमर नहीं समझ रहे हो तो भी तुम्हें अपने धर्म और कर्तव्य को लक्ष्य में रखते हुये डांवाडोल नहीं होना चाहिए। वास्तवमें क्षत्रियों के लिए धर्मानुकूल युद्ध से बढ़ कर कोई भी वस्तु नहीं है।

५९—हे अर्जुन ! यदि तुम इस धार्मिक संग्राम को न करोगे तो अपने धर्म और यश को खोकर पापी बन जाओगे।

६०—लोग तुम्हारी सदा रहनेवाली निन्दा करेंगे—भला तुम्हीं सोचो-होनेवाली निन्दासे तो मरना ही श्रेष्ठ है।

६१—इतना ही नहीं—लोग तुम्हारे लिए कुवाच्य निकालेंगे और तुम्हारी सामर्थ्य की भी निन्दा करेंगे। भला इससे बढ़ कर और क्या दुःख होगा !

६२—हे अर्जुन ! सारांश तो यह है कि यदि मर जाओगे तो सीधा स्वर्ग मिलेगा और जीत जाओगे तो इस विशाल पृथिवी का उपभोग करोगे इसलिए युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ। इस निन्दित नामर्दी को ठुकरा दो। यही तुम्हारा सच्चा धर्म है।
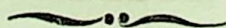
* अथ नवमं ज्ञानम् *

क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़ कर धर्म नहीं है ।

[५८]

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

[५९]

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्त्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।

[६०]

अकीर्त्तिञ्चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्त्ति र्मरणादतिरिच्यते ॥

[६१]

आवाच्य वादाँश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःख तरन्नु किम् ॥

[६२]

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय ! युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

❀ दसवां ज्ञान ❀

ब्राह्मणादि वर्ण गुण, कर्म और स्वभावानुसार हैं।

६३–हे अर्जुन! ब्राह्मणादि वर्ण, गुण, कर्म और स्वभाव से ही होते हैं। इसलिए क्षत्रियों का कर्म करके ही क्षत्रिय कहला सकते हो।

६४-विधाता ने इस सृष्टिके निर्माण में चारों वर्ण गुण, कर्म और स्वभावों से विभक्त कर दिये हैं। इसलिए अपने कर्म को करते हुवे ही सच्चे क्षत्रिय बन सकते हो।

६५–देखो ब्राह्मणों के लिए शम, दम, तप, शुद्धता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता आदि गुण सभी स्वभावानुसार हैं।

६६–इसीलिए क्षत्रियों के लिए शूरता, तेजस्विता, धीरता, निपुणता, युद्ध में स्थिरता, और दान का भाव भी स्वभाव के अनुसार ही हैं।

६७–कृषि, गोरक्षा और व्यापार वैश्यों के लिए स्वभावानुसार हैं इसीप्रकार शूद्रका मुख्य कर्म तीनों वर्णों की सेवा करना स्वभावानुसार है। तात्पर्य यह है कि वर्ण काम करने से ही स्थिर होता है।

* दशमं ज्ञानम् *

ब्राह्मणादि वर्ण गुण, कर्म और स्वभावानुसार हैं ।

[६३]

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परन्तप !
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः ॥

[६४]

चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुण कर्म विभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

[६५]

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ।

[६६]

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

[६७]

कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

❀ ग्यारहवां ज्ञान ❀

पण्डितजन कर्त्तव्यका त्यागन करके कामको छोड़ते हैं।

६८—हे अर्जुन ! सब से उच्च कोटि का त्याग यह है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य को कर्त्तव्य की दृष्टि से करता जावे और फल की आकांक्षा न करे। और यही सात्विक त्याग है।

६९—जो लोग दुःख समझकर अपने कर्त्तव्य को छोड़ बैठते हैं वे त्याग के फल को कदापि प्राप्त नहीं करते हैं और यह राजसी त्याग कहाता है।

७०—एवं जो लोग निश्चित कर्त्तव्यों को नहीं करते हैं और मोहवश त्यागी बनते हैं वे तामसी त्यागी हैं। उन का तो सर्वनाश ही जानो।

७१—हे अर्जुन ! सावधानहोकर सुनो ! विद्वान् लोग कर्त्तव्यों को करते हुवे केवल मनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए किये जाने वाले कामों को छोड़ना सन्यास और कर्मफल की आकांक्षा न रखना त्याग बताते हैं।

७२—सारांश तो यह है कि पण्डित जन काम और संकल्पों को जीतकर सर्व कार्यों को ज्ञानरूपी अग्नि से जला देते हैं और तब फल की आकांक्षा स्वतः विलीन होजाती है।

* अथ एकादशं ज्ञानम् *

पण्डित जन कर्त्तव्य का त्याग न करके काम को छोड़ते हैं

[६८]

कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन !
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः ॥

[६९]

दुःखमित्येव यत् कर्म काय क्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्याग फलं लभेत् ॥

[७०]

नियतस्य तु सन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्त्तितः ॥

[७१]

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः ।
सर्व कर्मफल त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

[७२]

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्प वर्जिताः ।
ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥

❀ बारहवां ज्ञान ❀

तप का स्वरूप समझकर तप करना लाभकारी है।

७३–हे अर्जुन ! तप तीन प्रकार का है–शारीरिक, वाचिक और मानसिक। उसमें पूज्यों की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप के मुख्य अंग हैं।

७४–वाणीका तप यह है कि मनुष्य ऐसी वाणी बोले जो उद्वेग जनक न हो–साथही प्यारी और हितकारी हो। यहां—स्वाध्याय का करना अनिवार्य बताया है।

७५–मानसिक तप मन को सर्वदा प्रसन्न रखने, उपयुक्त भोलापन धारण करने, परिमितभाषण करने, और इन्द्रियों के संयम करने में है। यहां–भावों का शुद्धरखना मुख्य बात है।

७६–इस प्रकार पूर्ण श्रद्धा से कर्मफल की इच्छा को सर्वथा त्यागकर मनुष्य सात्विक तपस्वी बनजाता है।

७७–सत्कार और पूजा के लिए जो मनुष्य दम्भ धारण करके तप करता है वह राजसी तपस्वी कहाजाता है।

अथ द्वादशं ज्ञानम्

तप का स्वरूप समझ कर तप करना लाभकारी है।

[७३]

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौच मार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

[७४]

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

[७५]

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः ।
भाव संशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥

[७६]

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ॥

[७७]

सत्कार मान पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥

७८–जो मनुष्य मूर्खता से अपने आप या दूसरे को पीड़ित करके तप करता है। वह तामसी तपस्वी कहाता है।

७९–हे अर्जुन ! याद रक्खो-जो मनुष्य शास्त्रों के विपरीत घोर तपों को दम्भ, अहंकार पूर्वक कामी और रागी होकर करते हैं वे राक्षस हैं।

८०–एवं वे लोग सब इन्द्रियों सहित इस शरीर को कष्ट देते हैं और साथही आत्मा को व्यथित करते हैं इसलिए हे अर्जुन इन सब को निश्चय से तुम राक्षस जानो।

८१–इस प्रकार शास्त्रों की विधि को छोड़कर केवल मनमाने तप करनेवाले मनुष्य न सिद्धि को पाते हैं और नाहीं सुख के भागी होते हैं।

८२–इसलिए हे अर्जुन ! तुम्हारे लिए केवल शास्त्र ही प्रमाण है। तुम शास्त्र की आज्ञा को भलीभांति जानकर कार्य करो अर्थात् क्षत्रियोचित वीरता से युद्ध की घोषणा करदो।

[७८]

मूढ ग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम् ॥

[७९]

अशास्त्र विहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकार संयुक्ताः काम राग बलान्विताः ॥

[८०]

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुर निश्चयान् ॥

[८१]

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

[८२]

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥
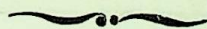
* तेरहवां ज्ञान *

सुख प्राप्ति के साधन आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य हैं।

८३–हे अर्जुन ! सात्विक प्रकृति वाले पुरुषों को आयु, बल, आरोग्य और सुख बढ़ानेवाले एवं रसीले और स्निग्ध भोजन प्रियहोते हैं।

८४–राजस प्रकृतिवाले पुरुष कड़वा, खट्टा, नमकीन, गरम, तीखा, रूखा भोजन पसन्द करते हैं जिनसे रोग पैदा होते हैं।

८५–इसीप्रकार सड़ा हुआ, दुर्गन्धित, बासा, जूठा और बुद्धिनाशक भोजन तामसीलोग पसन्द करते हैं। याद रक्खो–सर्व श्रेष्ठ सात्विक भोजन है और वही सुख का धाम है।

८६–हे अर्जुन ! अधिक आहार या बिलकुल निराहार एवं अतिनिद्रा या प्रजागरण सुख प्राप्ति में सहायक नहीं हैं।

८७–वास्तव में जिस पुरुष का सात्विक आहार, उपयुक्त निद्रा और व्यवस्थित चेष्टा अर्थात् ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन है। वही सच्चा योगी है और सुख का अनुभव भी उसी को होता है। अन्यों को त्रिकाल में भी नहीं।

अथ त्रयोदशं ज्ञानम्

सुख प्राप्ति के साधन आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य हैं।

[८३]

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाःस्थिराहृद्या आहाराःसात्त्विकप्रियाः

[८४]

कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टाः दुःख शोकामय प्रदाः ॥

[८५]

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितञ्च यत् ।
उच्छिष्टमपि चा मेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

[८६]

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

[७८]

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्यकर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

❀ चौदहवां ज्ञान ❀

दिव्यगुणों को धारण करना मोक्षमार्ग है ।

८८—हे अर्जुन ! निर्भयता, मनकी शुद्धि, ज्ञानका संचय,
८९—दान, जितेन्द्रियता, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता,
९०—अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निष्कपटता, प्राणियों पर दया, निर्लोभिता, मृदुता, लज्जा, चाञ्चल्य, तेज, क्षमा, धृति, पवित्रता, मित्रता, समानता इत्यादि गुण धारण करने वाले देवता कहाते हैं ।

९१—इसी प्रकार अहंकार, गर्व, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञानता आदि गुण राक्षसों में पाये जाते हैं ।

९२—हे अर्जुन ! स्मरण रखो—देवताओं के गुण मोक्ष के लिए हैं और राक्षसों के गुण जन्म मरण के बन्धनों के लिए हैं । हे पाण्डु के सच्चे पुत्र ! अर्जुन ! शोक मत करो । अपने पूर्व कर्मों के अनुसार तुम दिव्य गुणों से भूषित हो—इसीलिये तुम्हारा मोक्षमार्ग बना बनाया है ।
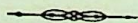
अथ चतुर्दशं ज्ञानम्

दिव्यगुणों को धारण करना मोक्ष मार्ग है।

[८८]

अभयं सत्व संशुद्धि र्ज्ञान योग व्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

[८९]

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलत् ॥

[९०]

तेजः क्षमा धृतिः शौच मद्रो हो नाति मानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत !!

[९१]

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ ! संपदमासुरीम् ॥

[९२]

दैवी संपद् विमोक्षाय निबन्धायासुरीमता ।
माशुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव !!

❀ पन्द्रहवां ज्ञान ❀

देश, काल और पात्र में ही दान का पुण्य है।

नोट्—धन को तीन गतियां हैं—दान, भोग और नाश। जो न दान करता है न उपभोग—उसका धन नष्ट हो जाता है। इसलिए विद्या की वृद्धि के लिए दान देना चाहिए क्योंकि बुद्धिमानों ने कहा है कि विद्या धन सब से बढ़कर है।

९३–हे अर्जुन! सात्विक दान की महिमा सुनो "देना चाहिए" केवल इस भाव से जो अपना पराया न न देखकर देश, काल और पात्र का विचार करता हुआ दान देताहै। वही सर्वोत्कृष्ट सात्विक दानी है।

९४–जो मनुष्य प्रत्युपकार की अभिलाषा से या किसी विशेष लक्ष्य को दृष्टि में रखकर कष्ट अनुभव करता हुवा दान देता है। वह राजसी मध्यम दानी है।

९५–हे अर्जुन! जो मनुष्य देश, काल का विचार न करके अपात्रों में दान देता है वह तामसी निकृष्ट दानी है। उस का दान तिरस्कार के योग्य है।

अथ पञ्चदशं ज्ञानम्

देश, काल और पात्र में ही दान का पुण्य है।

"जो दान नहीं देता है उसका धन नष्ट हो जाता है"

(यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति)

अतः विद्या वृद्धि के लिए दान दीजिए

(विद्या धनं सर्व धन प्रधानम्)

[९३]

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

[९४]

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

[९५]

अदेश काले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम् ॥

* सोलहवां ज्ञान *

ईश्वर का ध्यान सुख और शान्ति का स्रोत है।

९६—हे अर्जुन ! यह सोलहवां ज्ञान तुम्हें सच्ची शान्ति
९७—देने वाला है। सुनो—परमेश्वर ज्योतिष्मान् पिण्डों को भी ज्योति प्रदान करने वाला है—अन्धकार तो उसके पास फटकता भी नहीं है—वह परमदेव अन्धकार से सदैव परे रहता है। वही एक उपासनीय देव है। ध्यान रक्खो—वह तो सबके हृदय में विराजमान है। हे अर्जुन ! मैं बार २ नहीं शतवार कहता हूं कि तुम सर्वस्व छोड़ कर केवल उसी परम देव, महादेव, जगत् पिता की शरण लो। उसी की कृपा से शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त करोगे।

९८—परन्तु शुद्ध बुद्धि पूर्वक धैर्य से आत्मा को वश में
९९—करता हुवा इन्द्रियों के सुख और राग, द्वेष आदि
१००—को त्याग कर जब मनुष्य एकान्त सेवी, परिमित-भोजी, परिमितभाषी, सदाध्यानी, और स्थिर वैरागी हो जाता है—तभी अहंकार, बल, गर्व, काम, क्रोध, आदि से अलग होकर पूर्ण शान्ताकृति धारण करके ईश्वर को प्राप्त करनेमें समर्थ होताहै॥

*** आर्य कुमार गीता समाप्त ***

* अथ षोडशं ज्ञानम् *

ईश्वर का ध्यान सुख और शान्ति का स्रोत है।

[९६]

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञान ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

[९७]

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत !
तत् प्रसात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥

[९८]

बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन् विषमांस्त्यक्त्वाराग द्वेषौ व्युदस्य च ॥

[९९]

विविक्त सेवी लघ्वाशी यत वाकाय मानसः ।
ध्यान योगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥

[१००]

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

* समाप्तमिदं स्वाध्याय-शतकम् *

❀ आर्यकुमार-गायन ❀

(आर्यकुमार सभा में प्रार्थना के बाद गाना चाहिए)

यह वैदिक धर्म हमारा-है वैदिक धर्म हमारा ॥ ध्रुव ॥

(१)

हम हैं इसके रक्षक सारे, इस पर अपना तन मन वारें।
मिलकर अपना व्रत यह धारें-है ये ही प्राण अधारा ॥
(यह वैदिक धर्म०)

(२)

मातृभूमि की सेवा करना, भक्तिभाव से भेंटें धरना ।
इसके ऊपर जीना मरना-है कर्त्तव्य हमारा ॥
(यह वैदिक धर्म०)

(३)

वैर भाव को दूर भगाकर, जात पात का भेद भुलाकर ।
मिल जावो सब गले लगाकर,-फिर बहे प्रेमकी धारा ॥
(यह वैदिक धर्म०)

(४)

घर घर वेद मन्त्र सब गावो, वेदों को फिर से अपनावो ।
ऋषि उपदेश क्रिया में लावो-फिर बने आर्य जग सारा ॥
(यह वैदिक धर्म०)

(५)

सब मिल ऋषिवर के गुणगावो, हृदय बीचमें उन्हें बिठावो।
उनके आगे सीस झुकावो-जिन सब का जन्म सुधारा ॥
(यह वैदिक धर्म०)

प्रिन्टर लाला रामनारायण, मरचेंट प्रेस, कानपुर ।